Gyanvividha, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : PP-500-504

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 500-504
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. भोजराज

संस्कृत प्रवक्ता, भीम भोई कॉलेज, रेढाखोल.

Corresponding Author :

डॉ. भोजराज

संस्कृत प्रवक्ता, भीम भोई कॉलेज, रेढाखोल.

वैदिक निघण्टुकोश का कर्त्ता : एक विश्लेषण

निघण्टु के कर्त्ता के विषय में विद्वानों में अनेक मतभेद है अतः सभी ने अपना-अपना भिन्न-भिन्न मत दिया है। उक्त शोधलेख में विभिन्न मतों का विवेचन करते हुए एक निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया गया है।

निघण्टु यास्ककृत है : इस मत के कुछ तर्क इस प्रकार हैं- मधुसूदन सरस्वती ने निघण्टु को यास्ककृत माना है। उन्होंने अपने "महिम्नस्तोत्र' की व्याख्या प्रस्थानभेद में लिखा है "एवं निघण्टवादयोऽपि वैदिकद्रव्य देवतात्मक पदार्थपर्यायशब्दात्मकानिरुक्तान्तर्भूता एव। तत्रापि निघण्टु सञ्जक: पञ्चाध्यायात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केन कृतः।[1] उन्होंने यहाँ कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है। सायण के मत में पञ्च अध्याय वाला निघण्टु भी निरुक्त ही है "पञ्चाध्यायरूपे काण्डत्रयात्मके एतस्मिन्ग्रन्थे परनिरपेक्षतया पदार्थस्योक्तत्वात् तस्य ग्रन्थस्य निरुक्तत्वम्। तद्व्याख्यानञ्च "समाम्नायः समाम्नातः इत्यारभ्य तस्यास्तस्याद्भाव्यमनु भवति" इत्यन्तैः द्वादशाभिरध्यायैः यास्को निर्ममे।[2] वेङ्कटमाधव ने निघण्टु को यास्ककृत माना है "तत्रैकविंशतिः नामानि कश्चिद् गौर्विभर्तीति पृथिवीमाह। तस्य हि यास्कपठितानि एकविंशतिर्नामानि।"[3] अन्यत्र वे कहते हैं "वहसि वोढव्यं त्वमिति महन्नामधेयेषु यास्कः पठति "विवक्षसे" (निघ. 3/3) इति। इनके मत में वर्तमान निघण्टु यास्ककृत ही है। शिवनारायण शास्त्री ने प्राप्त निघण्टु को यास्ककृत ही माना है। उन्होंने अपना मत इस प्रकार रखा है "हमें जो विचार तथा सूचनायें उपलब्ध हैं, उनके आधार पर निरुक्त के उपजीव्य निघण्टु को यास्क से भिन्न किसी व्यक्ति अथवा पीढ़ियों की कृति बतलाना दुराग्रह ही होगा[4] यदि कोई कहता है कि यास्क इतने निम्नकोटि का कोश संकलन नहीं कर सकते हैं तो इस पर उन्होंने उत्तर दिया है कि "इस पर हमारा उत्तर यह है कि यास्क के समय में विद्यमान कोशकला के विकसित न होने का ही दोष है, यास्क का नहीं[5] आगे उन्होंने तर्क दिया है कि यदि यह निघण्टु अन्योक्त होता तब भी हम यही कहते कि इस लचर कोश पर व्याख्या लिखने की बजाय यास्क ने अपना कोश क्यों नहीं बनाया? अतः हमारा यही विचार

है कि यास्क ने ही इस कोश का संकलन किया है। उनके पूर्व के कोशों में और भी गड़बड़ियां रही होंगी। यास्क ने उन गड़बड़ियों का तो निर्देश भी किया है कि कुछ कोशकारों ने अपने कोशों में देवताओं के पर्यायों तथा विश्लेषणों का भी समाम्नान किया हुआ था, जिससे उनका आकार तो माशा अल्ला खासा बन गया था, पर वे जमाने के आगे टिक नहीं पाये। यास्क ने उन दोषों से अपने निघण्टु को बचाया"।[6] निरुक्त में पठित अनेक वाक्य विचारणीय हैं जैसा कि ग्रन्थारम्भ में पढ़ा गया है "समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः"।' अर्थात् समाम्नाय का समाम्नान किया गया, अब व्याख्या करनी चाहिए। उक्त वाक्य से सूचित होता है कि समाम्नाय का समाम्नान और व्याख्यान करने वाला एक ही व्यक्ति है। यदि अन्य व्यक्ति द्वारा समाम्नायों का संग्रह किया गया होता तो "समाम्नायः व्याख्यातव्यः"[7] ऐसा पाठ प्राप्त होता परन्तु ऐसा पाठ यास्क ने नहीं किया है।

अन्यत्र दैवत शब्दों के निर्वचन के प्रसङ्ग में कहते हैं "अथ उत अभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति इन्द्राय वृत्रहन, इन्द्राय वृत्रतुरे, इन्द्राय अंहोमुच इति तान्यप्येके समामनन्ति। भूयांसि तु समाम्नात्। यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधान्यस्तुति तत्समामने।"[8] ब्राह्मण ग्रन्थ भिन्न-भिन्न विशेषणों से संयुक्त करके किसी के लिये हवि का विधान करते हैं जैसे वृत्रहन इन्द्र, वृत्रतुर इन्द्र, अंहोमुच इन्द्र इत्यादि। ऐसे प्रयोगों को देखकर अनेक निरुक्तकार वृत्रघ्न, वृत्रतुर और अंहोमुच आदि देवतावाचक विशेषणों को समाम्नाय में परिगणन करते हैं, लेकिन इस प्रकार परिगणन करने पर भी बहुत बड़ी संख्या में देवतावाचक पद अपरिगणित रह जाते हैं, क्योंकि विशेषणवाचक शब्द बहुत अधिक हैं। यदि सभी विशेषण पदों की गणना की गयी तो कोश अतिबृहत् हो जायेगा तथा फिर भी सभी विशेषणों का संग्रह असम्भव होगा। अतः यास्क कहते हैं कि मैं प्राधानरूप से स्तुत देवतावाचक पदों का परिगणन करता हूँ। अनन्तर पुनः यास्क ने कहा है कि "अथोत कर्मभिर्ऋषिर्देवता स्तौति वृत्रहा पुरन्दर इति। तान्यप्येके समामनन्ति। भूयासि तु समाम्नात्। व्यञ्जनमात्रं तु तत् तस्याभिधानस्य भवति यथा ब्राह्मणाय बुभुक्षितायौदनं देहि, स्नातायानुलेपनं पिपासतेपानी यमिति"।[9] अर्थात् वेद भिन्न-भिन्न कर्मों से किसी देवता की स्तुति करता है जैसे वृत्रहा, पुरन्दर आदि से इन्द्र की स्तुति होती है। वृत्र का वध करने से इन्द्र 'वृत्रहन्' तथा शत्रु नगरों को ध्वस्त करने से वह 'पुरन्दर' कहलाता है। वृत्रहा, पुरन्दर आदि शब्द इन्द्र के विशेषण मात्र हैं। भिन्न-भिन्न विशेषणों से युक्त देवताओं को देखकर कतिपय निघण्टुकार भिन्न मानकर उन विशेषणों को अपने शास्त्र में समाम्नान करते हैं परन्तु ऐसे देवतापद परिगणित देवता पदों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। इन उद्धरणों से प्रतीत होता है कि निरुक्तकार अनेक हैं जो विशेषण सहित देवतावाचक शब्दों का संग्रह करते हैं।

यास्क ने 'निघण्टु' शब्द की व्याख्या में अपने से पूर्ववर्ती निरुक्तकार उपमन्यु का मत दिया है "ते निगन्तव एव सन्तो निगमनान्निघण्टव उच्यन्त इत्यौपमन्यवः।[10] उक्त तथ्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यास्क से पूर्व 'निघण्टु' की रचना हो चुकी थी और उसकी व्याख्या अन्य निरुक्तकारों ने भी किया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि 'निघण्टु' शब्द व्यक्तिवाचक नहीं है अपितु जातिवाचक है। जैसा कि यास्क ने कहा है "एतावन्तः समानकर्मणो धातवः। धातु दधातेः। नैघण्टुकमिति नामधेयानि। एतावतामर्थानामिदमभिधानम्, देवतानामप्राधान्येनेदमिति"।[11] समानार्थक धातुओं का संग्रह एक ही अर्थ वाले भिन्न शब्दों का संग्रह, कई अर्थों वाले शब्दों का संग्रह, देवताओं के प्रधान तथा गौण नामों का संग्रह इत्यादि चार बातें निघण्टु में प्राप्त होती हैं।

डॉ. स्कोल्ड ने हस्तलिखित ग्रन्थों का आधार लेकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि "निरुक्त का पूर्वषट्क (1-6 अध्याय) और उत्तरषट्क (7-12) दो ग्रन्थ हैं, दोनों की शैली भी भिन्न है अतः एव निघण्टु में भी पहले दैवतकाण्ड नहीं रहा होगा। यास्क ने स्वयं भी "साक्षात्कृत्धर्माण ऋषयो बभूवुः" (1/20) वाले सन्दर्भ के द्वारा भी निघण्टु के पारम्परिक रचयिताओं की ओर संकेत किया है।[12]

निरुक्त के अन्यत्र एक स्थान पर कहा गया है कि "इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं वेदाङ्गानि च" अर्थात्

साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने इस ग्रन्थ का समाम्नान किया और वेद-वेदाङ्गों का भी समाम्नान किया। यहाँ 'इमं ग्रन्थम्" से निघण्टु के ग्रथन किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। एक बात और विचारणीय है यास्क ने जो निरुक्त में कहा है कि "हिरण्यनामान्युत्तराणि पञ्चदश"[13] अन्तरिक्षनामान्युत्तराणि षोडश"[14] अर्थात् उनसे आगे हिरण्य के पन्द्रह नाम हैं, उनसे आगे अन्तरिक्ष के सोलह नाम हैं इत्यादि। यदि मूल के साथ-साथ व्याख्यान होता तो उनके उत्तर वे नाम हैं और इनके उत्तर ये नाम हैं इत्यादि कहने की कोई आवश्यकता न थी। इससे प्रतीत होता है कि यास्क ने निगमों से समाम्नायों को संकलित किया जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं था तदनन्तर उनकी व्याख्या की है।

अब यह विचार किया जा रहा है कि निघण्टु यास्ककृत नहीं है अपितु यह पूर्व की रचना है इस विषय में क्या तर्क प्राप्त होते हैं।

निघण्टु यास्क से पूर्व की रचना : लक्ष्मणसरूप के मत में "सम्भवतः निघण्टु एक अकेले व्यक्ति की कृति नहीं है, अपितु पूरी पीढ़ी या सम्भवतः अनेक पीढ़ियों के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम है"।[15] कुछ विद्वान् प्रजापति कश्यप को निघण्टु के रचयिता मानते हैं महाभारत में एक श्लोक प्राप्त होता है "वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत। - निघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्"। कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते। तस्माद् वृषाकपिः प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः ।।[16] उक्त श्लोक पर टिप्पणी करते हुए लक्ष्मणसरूप ने कहा है कि "द्वितीय पद्य से कई विवेचक यह परिणाम निकालते हैं कि प्रजापति कश्यप निघण्टु के प्रणेता हैं, क्योंकि वृषाकपि शब्द निघण्टु में मिलता है। ऐसे साक्ष्य पर कोई भी युक्ति-निर्माण उचित नहीं है, क्योंकि यह मान लें कि कश्यप ने वृषाकपि शब्द का आविष्कार किया तो निघण्टु जैसे कठिन शब्दों की सूची में वह अपना शब्द कदापि नहीं रख सकते हैं।[17] यहाँ यह भी विचारणीय है कि निघण्टु में निगमों से शब्दों को संकलित किया गया है अतः किसी व्यक्तिविशेष के नाम से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है।

काशीराम रामवाडे निघण्टु को यास्क से प्राचीन तथा अनेक आचार्यों की रचना मानते हैं।[18] आर. डी. कर्मकर निघण्टु को अनेक आचार्यों द्वारा रचित मानते हैं, उनका तर्क है कि "निघण्टु के प्रथम तीन अध्यायों के रचयिता से, चतुर्थ अध्याय के द्वितीय खण्ड का रचयिता भिन्न है। इसका कारण यह है कि इसमें कुछ ऐसे शब्द दिये गये हैं, जो पिछले तीन अध्यायों में आ चुके हैं। जैसे अन्धः (2/7/1, 4/2/6), वराहः (1/10/13, 4/2/21), स्वसराणि (1/9/5, 4/2/22), सिनम् (2/7/8, 4/2/28), वयुनम् (3/1/10, 4/2/48)। इससे स्पष्ट है कि यदि निघण्टु (4.2) खण्ड का रचयिता निघण्टु के पूर्व तीन अध्यायों से परिचित होता, तो उनको दुहराता नहीं"।[19] आर. डी. कर्मकर का यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि कोई पूर्व के तीन अध्यायों का बिना निरीक्षण-परीक्षण के कोई चतुर्थ अध्याय क्यों लिखेगा। अतः पूर्व अध्यायों से परिचित होकर ही चतुर्थ अध्यायगत शब्दों को सङ्कलित करेगा। पुनः शब्दों का दोबारा आना सप्रयोजन ही है, क्योंकि नैघण्टुक काण्ड में एकार्थवाचक अनेक शब्दों को दर्शाया गया है और चतुर्थ अध्याय में अनेकार्थवाचक शब्दों को सङ्कलित किया गया है। यही कारण हो सकता है कि पूर्व शब्दों को दोबारा पढ़ा गया हो। कर्मकर ने आगे कहा है कि "निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में भी प्रथम और तृतीय खण्ड के रचयिता पृथक् पृथक् हैं। इस अध्याय के प्रत्येक खण्ड में, मन्त्र में एक साथ आने वाले कतिपय शब्द-युगलों का परिगणन हुआ है। इस प्रकार के दो शब्द-युगल प्रथम खण्ड में जैसे विद्रधे, द्रुपदे और दावने, अकूपारस्य[20] तथा द्वितीय खण्ड में वाहिष्ठः, दूतः[21] तथा कूटस्य चर्षणिः[22] हैं। इनमें से प्रथम शब्दयुगल की मन्त्रगत सन्धि को विगृहीत किया गया है, जबकि दूसरा युगल यथाश्रुत रूप में पठित है। तृतीय खण्ड में निम्न चार युगल है, जिनमें से दो अनवायम्, किमीदिने[23] और चनः, पचता[24] मन्त्र में पठित विभक्त्यन्त हैं, किन्तु दोश्रुष्टी, पुरन्धिः[25] तथा सदान्वे, शिरिम्बिः[26] की मन्त्रगत विभक्तियों को परिवर्तित कर दिया गया है। यदि दावने, अकूपारस्य को मन्त्र्य में पठित विभक्ति के अनुरूप रखा जा सकता है तो फिर पुरन्धिम्, शिरिम्बिठस्य को क्यों नहीं? इससे विदित होता है कि तृतीय खण्ड और प्रथम खण्ड के रचयिता एक व्यक्ति

नहीं है'।[27] इस प्रकार कर्मकर का आश्रय यह है कि निघण्टु की रचनाशैली आदर्श नहीं है तथा इसमें एकरूपता का अभाव दिखाई देता है। अतः यह निघण्टु अनेक आचार्यों द्वारा रचित है।

दुर्ग ने निरुक्तवृत्ति में कहा है "गवादिदेवपल्यतः शब्दसमुदाय उच्यन्ते। ऋषिभिर्मन्त्रार्थपरिज्ञानायोदाहरणभूतः पञ्चाध्यायीशास्त्र सङ्ग्रहभावेनैकस्मिन्नध्याये ग्रन्थीकृत इत्यर्थः"[28] अर्थात् इस निरुक्त में 'गो' से लेकर 'देवपत्नी' पर्यन्त शब्दसमुदाय का विवेचन किया गया है। उक्त 'गौ' से आरम्भ होकर देवपत्नी पर्यन्त चलने वाले कोष को ऋषियों ने मन्त्रार्थ के परिज्ञान के लिए पञ्चाध्यायात्मक कोष में ग्रथित किया है। इस उद्धरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दुर्ग निघण्टु को प्राचीन ऋषियों की रचना मानते हैं।

अपने स्कन्द भाष्य में स्कन्दमहेश्वर स्वामी ने लिखा है "समाम्नायशब्देनात्र गवादिर्देवपत्न्यतः शब्दसमूह उच्यते, न वेदः। समाम्नातः सम्भूयाभिमुखेनाम्नातः अभ्यतः। ग्रन्थीकृत्य पूर्वाचार्यैः पठित इत्यर्थः । ..... एता गवादयः शब्दा पूर्वाचार्यैरुच्यन्ते"[29] कि 'समाम्नाय' शब्द से 'गौ' से आरम्भ होकर 'देवपत्नी' पर्यन्त चलने वाला शब्दसमूह कहा जाता है, न कि वेद। उक्त कोष को पूर्वाचार्यों ने ग्रथित करके इस रूप में पढ़ा है, ये गवादि शब्द पूर्व आचार्यों के द्वारा कहे गये हैं। पुनः आगे स्कन्दमहेश्वर ने कहा है "अयं पूर्वाचार्यैः। तैर्हास्य निघण्टुरिति संज्ञा कृता"[30] कि निघण्टु संज्ञा तथा उसके निर्वचन प्रदर्शन से ज्ञात होता है कि पूर्व आचार्यों ने इसका व्याख्यान किया है और उन्होंने इसकी निघण्टु संज्ञा भी की है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि स्कन्द निघण्टु को प्राचीन ऋषियों की रचना मानते हैं। भगदत्त ने अनेक निघण्टु हैं ऐसा सप्रमाण सिद्ध किया है।[31]

अथर्वपरिशिष्ट का अड़तालीसवां (48वां) परिशिष्ट भी निघण्टु ही है जिसे ये कौत्सव्यकृत मानते हैं। बृहद्देवता में यास्क के नाम के साथ-साथ शाकपूणि का भी उल्लेख कई बार हुआ है, इससे निश्चय ही उनका निघण्टु और निरुक्त रहा होगा। पूना से उन्होंने शाकपूणि के निघण्टु को प्रकाशित भी कराया है।[32]

इसके अतिरिक्त और भी कुछ तथ्य हैं जो विचारणीय हैं जैसे कि आप्री देवताओं की व्याख्या के प्रसङ्ग में 'त्वष्टा' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं "माध्यमिकस्त्वष्टेत्याहुर्मध्यमे च स्थाने समाम्नातः। अग्निरिति शाकपूणिः"।[33] अर्थात् कतिपय आचार्य त्वष्टा को अन्तरिक्षस्थानीय वायु मानते हैं परन्तु शाकपूणि त्वष्टा को पृथिवीस्थ अग्नि मानते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि निघण्टु पूर्व ही विद्यमान था जिसकी व्याख्या अन्यान्य निरुक्तकारों ने की है जैसा कि त्वष्टा शब्द के विषय में विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। यास्क ने दैवतकाण्ड की व्याख्या में वैश्वानर',[34] द्रविणोदस्[36] इत्यादि अनेक शब्दों की व्याख्या में विभिन्न मतों को दर्शाया है।

यास्क ने 'निघण्टु' शब्द की व्याख्या में "ते निगन्तव एव सन्तो निगमनान्निघण्टव उच्यन्त इत्यौपमन्यवः"[35] कहकर अपने से पूर्ववर्ती आचार्य औपमन्यव के मत को कहा है। इससे प्रतीत होता है कि निघण्टु की व्याख्या पहले भी की जा चुकी है अतः यास्क ने उनके मतों को दर्शाया है। नैगमकाण्ड के व्याख्यान के प्रसङ्ग में यास्क ने कहा है "तदैकपदिकमित्याचक्षते" कि उस नैगमकाण्ड को कुछ आचार्य ऐकपदिक काण्ड भी कहते हैं। इस प्रकार के कथनों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यास्क के पूर्व ही निघण्टु विद्यमान रहा है। जिस पर पूर्ववर्ती निरुक्तकारों ने स्वतन्त्र व्याख्या की है। निरुक्त में कहा है कि "उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषु वेदं च वेदाङ्गानि च" (1.20) यहाँ पर 'इमं ग्रन्थम्' से तात्पर्य निघण्टु है। इस प्रकार निघण्टु का उपदेश पहले से ही दिया गया है।

यास्क ने अनेक स्थल पर "इति नैरुक्ताः" ऐसा अनेक बार कहा है तथा अपने कथनों को पुष्ट किया है। इस प्रकार के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि अनेक निरुक्तकार हुए हैं जिन्होंने निघण्टु की व्याख्या की है।

निघण्टु के विषय का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि "एतावन्तः समानकर्माणो धातवः धातुर्दधातेः एतावन्त्यस्य सत्वस्य नामधेयानि। एतावतामर्थानामिदमभिधानं नैघण्टुकमिदं देवतानां प्राधान्येनेदमिति" इस प्रकार के कथनों से स्पष्ट है कि निघण्टु पूर्व ही विद्यमान रहा है।

यास्क से पूर्ववर्ती कुछ निरुक्तकार देवताओं के विशेषण पदों को भी ग्रहण किया है, किन्तु यास्क उन्हें पृथक् देवता नहीं मानते हैं और उनकी व्याख्या भी नहीं करते हैं केवल विशेष्य पदों को ही ग्रहण करते हैं। "यथा यथोत कर्ममिर्ऋषिदेवता स्तौति। वृत्रहा पुरन्दर इति। तान्यप्येकेसमाम्नन्ति। भूयासि तु समाम्नात्"। (7.13) इस प्रकार पूर्ववर्ती निरुक्तकारों ने भी निघण्टु की व्याख्या की है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि निघण्टु यास्क से पूर्व ही विद्यमान रहा है। वेद के विभिन्न शाखाओं के विभिन्न निघण्टु रहे होंगे जिनकी व्याख्या ग्रन्थों को निरुक्त कहा जाता था। आप्टे ने अपने शब्दकोश में भी निघण्टु का अर्थ, शब्दावली कहा है तथा विशेषरुप से वैदिक शब्दावली जिसकी व्याख्या यास्क ने अपने निरुक्त में की है।[37] शब्दकल्पद्रुम में कहा गया है कि हेमचन्द्र के अनुसार निघण्टु नामसंग्रह को कहते हैं।[38] यह कारण है कि वैद्यकनिघण्टु आदि भी प्राप्त होते हैं। यास्क ने सम्भवतः निघण्टु को कुछ संशोधित तथा परिष्कृत करके उसकी व्याख्या की है। यास्क के व्याख्यानों की विशेषता के कारण निरुक्त अत्यधिक लोकप्रिय रहा है अतः आज के समय में वह उपलब्ध होता है और उसके द्वारा व्याख्या की गयी वैदिक शब्दों की सूची हमें प्राप्त होती है जिसको निघण्टु कहते हैं। दुर्ग तथा स्कन्द भी निघण्टु को यास्क से पूर्ववर्ती ही स्वीकार करते हैं जिससे उपर्युक्त कथन पुष्ट होता है। इस प्रकार प्राप्त निघण्टु यास्ककृत है अथवा नहीं यह निश्चय न होने पर भी इतना तो निश्चय है कि निघण्टु की विधा, पूर्व ही विद्यमान रही है। यास्क उससे अभिज्ञ थे तथा उन्होंने पाठ को संशोधित करके व्याख्या की है, जिसको यास्कीय निरुक्त कहते हैं।

संदर्भ सूची :

1. प्रस्थानभेद, श्लोक 7 की व्याख्या, त्रयी सांख्ययोगम्, इस पर उन्होंने बृहत् टीका लिखी।
2. सायण, 'ऋग्वेदभाष्य' की भूमिका।
3. ऋग्वेदभाष्य 7/84/4
4. निरुक्त पूर्वमीमांसा, भूमिका, पृ.29
5. निरुक्त पूर्वमीमांसा, भूमिका, पृ.29
6. द्र. वही
7. निरुक्त 1/1
8. निरुक्त 7/13
9. निरुक्त 7/13
10. निरुक्त 1/1
11. निरुक्त 1/6
12. निरुक्त ऑफ यास्क, उमाशंकर शर्मा, भूमिका, द्वि.परिच्छेद, पृ.15 (Sklod-The Nirukta,P.6.)
13. निरुक्त 2/10
14. द्र. वही
15. निघण्टु तथा निरुक्त, भूमिका, पृ. 10
16. महाभारत, मोक्षपर्व, अध्याय 342, श्लोक 86-87
17. निघण्टु तथा निरुक्त, भूमिका, पृ.10
18. यास्काज निरुक्त, पृ. 215
19. विश्रुपाद भट्टाचार्य, यास्काज निरुक्त, पृ.27-28
20. निघण्टु,4/18-19
21. निघण्टु 4/22-23
22. निघण्टु 4/2/70-71
23. निघण्टु 4/3/43-44
24. निघण्टु 4/3/64-65
25. वही 4/3/50-51
26. वही 4/3/19
27. यास्काज निरुक्त, पृ.28-30
28. दुर्ग, निरुक्त वृत्ति, 1/1, पृ.05
29. स्कन्दभाष्य, निरुक्त भाग-1, पृ.04
30. वही, पृ.07
31. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग 01, खण्ड 2
32. त्रिवेदी, रामगोविन्द, वैदिक-साहित्य, पृ. 2/7
33. निरुक्त 8/14
34. निरुक्त 7/23
35. वही 8/2
36. वही 1/1
37. द्र.निघण्टु' शब्द, संस्कृत-हिन्दी- शब्दकोश, आप्टे, शिवराम, पृ.523
38. निघण्टु' शब्द, शब्दकल्पद्रुम, पृ.877, भाग